National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(23): 68-70
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ.हमीरभाई पी. मकवाणा
प्राचार्य, श्री जे.एम.पटेल पी.जी स्टडीज एन्ड रीसर्च इन ह्यूमिनिटीझ, आणंद

Correspondence
डॉ.हमीरभाई पी. मकवाणा
प्राचार्य, श्री जे.एम.पटेल पी.जी स्टडीज एन्ड रीसर्च इन ह्यूमिनिटीझ, आणंद

समकालीन कविता और मिथकीय विचार

डॉ. हमीरभाई पी. मकवाणा

सारांश-

आधुनिक युग में मानव अपने बाहरी जीवन की जटिल समस्याओं से भले ही अपने आपको अलग अकेला महसूस करते हैं, परंतु अपने अवचेतन मन और भाव से वे अकेला नहीं है। वह अवचेतन प्रभावों से अपनी जातीय स्मृतियों से सब के साथ जुड़ा हुआ हैं। उतना ही नहीं उस अवचेतन भाव उसे सामूहिक जातीय मानस का अभिन्न अंग भी बनाते है। इस प्रकार सामूहिक जातीय मानस की अपनी एक विशिष्ट पहचान और इतिहास होता है। इस जातीय मानस की पहचान को तात्विक भाव से मिथक रूप में पहचाना जाता है।

साहित्य में कविता व्यक्ति मन और समूह-मनकी शोध है। भाषा के मूर्त-अमूर्त वर्तनी में ध्वनी, संकेत व्यंजना आदि में जाने अंजाने इस सोये हुए मन की परतों को उद्दीप्त कराना काव्य का अभीष्ट है। इस अभीष्ट के लिए धर्म जैसे काव्य की अपेक्षा रखता है, उसी प्रकार काव्य मिथक की। वैसे तो मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति के बहुत सारे माध्यम है फिर भी मनुष्य ने उन भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए मिथक को ही अपनाया, क्योंकि मिथक मनुष्य के बौद्धिक विचारों का नहीं उसके हृद्धय की भावनाओं को प्रकट करने का सरल एवं सशक्त माध्यम है। मिथक के माध्यम से व्यक्त की गई भावनाएँ सीधे हृद्धय को प्रभावित कर सत्य को आत्मसात करती है। मिथक को कोरी कल्पना मानने की भूल नहीं करनी चाहिए। यह सामूहिक स्तर पर भोग गया सामाजिक यथार्थ है, धार्मिक विश्वासों के रूप में जिया गया पवित्र यथार्थ है और सामूहिक अवचेतन के रूप में विकसित मानसिक यथार्थ है।

मूल शब्द- मिथक, तात्विक, अभीष्ट, अस्मिता, सापेक्षता आख्यान, वासुकि, सहस्फन, शाश्वत ।

आधुनिक मनुष्य बाहरी जीवन में इस जटिल समस्याओं में अलग-थलग अकेला या अजनबी क्यों न हो, परंतु वह अपने अचेतन भाव से अकेला नहीं है । वह अवचेतन प्रभावों में, अपनी जातीय स्मृतियों में सब के साथ जुड़ा हुआ, सब के साथ साझीदारी भी करता नजर आता है। इस साझीदारी से उसे छुटकारा नहीं, वह कहीं अद्धश्य स्मृति-सूत्रों से अंजाने ही बंधा हुआ भी है। ये स्मृति-सूत्र उसके अचेतन मन पर जो चेतन से भी अधिक गहन-व्यापक है, अपना अमिट शासन जमाए रहते है, और सामूहिक जातीय मानस का अभिन्न अंग भी बनाते हैं। इसप्रकार इस सामूहिक जातीय मानस की अपनी एक विशिष्ट पचान और इतिहास होता है इस जातीय मानस की पहचान को तात्विक द्रष्टि से मिथक रूप में पहचाना जाता है।

साहित्य में कविता वस्तुतः व्यक्तिमन और समूह मन की शोध है। भाषा की मूर्त-अमूर्त वर्तनी में ध्वनी, संकेत, व्यंजना आदि में जाने-अंजाने इस सोचे हुए मन की परतों को छोड़ना, जगाना काव्य का अभीष्ट है। इस अभीष्ट की सिद्धि के लिए धर्म जैसे काव्य की अपेक्षा रखता है, उसी प्रकार काव्य मिथक की। वैसे भी विश्वास के बिना धर्म की सिद्धि नहीं होती। मिथक की मूल प्रकृति ही सामूहिक विश्वास पर आधृत रहती है। इस कारण भी काव्य से विभिन्न मिथकों के द्वारा धर्म अपना हित साधता रहा है तथा काव्य अपनी व्यापक वृहत् प्रभावी भूमिका के लिए पौराणिक सुप्त विश्वासों का लाभ अपनी युगीन जरूरतों के लिए उठाया करता है। काव्य जब सामूहिक विश्वासों विचारों का संवर्धन करना चाहता है, समाज में बड़ी हलचल उत्पन्न करना चाहता है, या अपने उच्चत्तम सोपान पर उसे सबसे उपयुक्त एवं अनुकूल और बनी-बनायी परिपाटी मिथकीय सरोंकारों में ही उपलब्ध होती है। काव्य अपने सूक्ष्म, सिद्धि सम्वेदनशील मिथकीय सरोकारों से उसे सामूहिक सुप्त धरातल को छू कर अद्रश्य प्रकंप उत्पन्न कर देता है, जो सामूहिक मानसिक धरातल है। इसलिए यह भी कहा जाता है कि मिथक में सत्य का आभास होता है। काव्य भी अपनी मूल प्रकृति में सत्प्रभासी होता है।

यथार्थ को भी ज्यों का त्यों नहीं, सत्यभासी बनाकर प्रस्तुत करने पर काव्य ग्राह्य होता है। मिथक पुराकल्पना भी है और एक युग में सामूहिक विश्वास में जीया गया सत्य भी। किन्तु विशिष्ट अर्थो में विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक प्रयोगिकता से जुड़ा रहता है । मिथक जातीय स्मृतियों, आशयों आकांक्षाओं के साथ अचेतन की गहराइयों तक जुड़ा रहता है, इसलिए युग सत्य की सच्चाइयों को पस्तुत करने अपनी जातीय अस्मिता को उपलब्ध करने के लिए रचनाकार को एक व्यापक परिचित भूमि भी प्रदान करता है। वह बिम्ब, प्रतीक, संकेत, ध्वनि आदि के द्वारा प्रकाशित होता है। मिथक वैसे तो आदिम मानवजाति की सोच की बनावटों रूपों से जुड़े होने के कारण मौलिक अभिव्यक्ति एवं भावनाओं के संचित रूप है। क्योंकि भौतिक प्राकृतिक विपत्तियों के अवसर पर कल्पना-सोच के सामूहिक स्वरूपों को अपनी भीतर समेटे रहते है। कहा जाता है कि किसी भी मिथक का काव्य में पुनः सृजन, ज्यों का त्यों वर्तन, संभव नहीं होता। अपने विशिष्ट रूपाकार की द्रष्टि से आधुनिक युग की वैज्ञानिक तार्किकता की मिथक के साथ पटरी नहीं बैठती,क्योंकि मिथक अतार्किक सत्य को वहन करता है, किन्तु अपने इसी अतार्किक सत्य को आत्मसात किए रखने की शक्ति के कारण ही वह आज के अत्यंत जटिल यथार्थ को पकड़ पाने में भी सफल है, जैसे- निरालाजी की 'राम की शक्ति पूजा' धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', 'प्रमथ्युगाथा', मुक्तिबोध का 'अंधेरे में' तथा शमशेरबहादुर सिंह के 'सीता'।

पुराणों के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि-"पुराण मनुष्य की उस कल्पना का जातीय रूप है। जो जगत के व्यापारों को समझ ने में बुद्धि के कुंठित होने पर उद्‌भुत हुई थी, और दीर्धकाल तक जातीय चिंता के रूप में संचित होकर विश्वास का रूप धारण कर गई है।"[1] कवि पुराण कल्पना के इस घनिष्ठ विश्वास को युगीन स्थितियों की जटिलता को उद्‌घाटित करने में लगाकर नए संदर्भो को उजागर करता है। अतः आधुनिक मनुष्य की जटिल मानसिकता और अंतः प्रकृति तक पहुँचने के लिए पौराणिक प्रतीकों का सहारा लिया जाता है, जो एक ओर उसके अनुभवजगत को ऐतिहासिक पौराणिक आयामों से जोड़ दें, तो दूसरी ओर युगीन यथार्थ के अतक्यॅ सत्यों को पकड़ पाने का प्रयत्न भी करे। मिथक प्रतीकों का समूह नहीं है, भले ही मिथक प्रतीकार्थों में हो, साहित्य में चरितार्थ होते हों, परन्तु एक मिथक में कई अधरूप समाहित रहता हैं। मिथक लक्षण के द्वारा प्रतीक में परिवर्तित होता है, किन्तु यह कवि प्रतिभा पर निर्भर होता है कि मिथक को पुनः सृजन के धरातल पर स्वाभाविक अवतरण हो पाया है या फिर वह एक महज आरोप बन कर रह गया है। पुराण मानव की पुराकाल की वैज्ञानिक भावदशाओं का इतिहास भी है, जिस में समूची जातिया समूह की चेतना का निवास होता है। किन्तु इसमें प्रतीक जैसी व्यावहारिक निश्चितता नहीं होती, संदर्भ स्थितिगत परिवर्तनों में पुराख्यातत्व के ओर-छोर बदलते रहते हैं।

भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में डॉ.बलदेव वंशी लिखते है कि – 'मिथक गहरे में कोरी कल्पना न होकर मनुष्य की सामूहिक विचार प्रक्रियाओं, क्रियाओं, शाश्वत सत्यों विश्वासों आदि से साक्षात्कार कराने का माध्यम है।'[2] मिथकीय पुनर्रचना अपने दूरगामी, सूक्ष्म सांस्कृतिक सूत्रों में बिखरे यथार्थ को पुनः नई अर्थ पत्तियों-छवियों-संकेतों में समेट लेता है और नई युगीन धारणाओं विचारों को सापेक्षिक गहनता एवं आयाम दे देती है। इन्हीं कारणों से नई कविता के प्रयोगधर्मी कवियों ने धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' कुवरनारायण का 'आत्मजयी' नरेश मेहता का 'संशय की रात' दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी'जगदीश गुप्त का 'शम्बूक' आदि की रचना कर के अपने युग को मथने का प्रयास किया है। जातीय मन में सुसुप्त भावों विचारों को आंदोलित किया है । किन्तु नई कविता के ये उक्त प्रयोग जहाँ सांस्कृतिक गरिमा एवं अस्मिता के मूल्यों की पड़ताल में अधिक संलग्न रहे हैं, वहाँ समकालीन कविता के कवि मिथकीय आधारों को अपेक्षतया व्यक्ति के समकालीन संघर्ष और दर्शन के अनुभूत पक्षों को समेटने के लिए अधिक व्याकुल है। समकालीन कवियों के मिथकीय काव्य, जो प्रायः लम्बी कविताओं के रूप में या कई कविताओं के क्रम के रूप में सामने आये हैं, इनमें मिथक के पौराणिक स्वरूपों से लेकर अधुनातन स्वरूपों-जैसे वैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक, प्राकृतिक ऐतिहासिक मिथक तक के विभिन्न प्रयोग मिलते हैं। पुराख्यानक आधार पर 'एक पुरुष और' विनय 'एक पौराणिक वेदना' रामदेव आचार्य 'आत्मदान' बलदेव वंशी 'वैश्वानर' मृत्युंजय उपाध्याय आदि की रचना हुई है, तो आधुनिक रूप में विभिन्न कवियों की लम्बी कविताओं के रूप में उनका विकास छिटपुट रूपों में हुआ हैं। समकालीन कविता एक ओर के सामयिक-ऐतिहासिक आयामों से गहन स्तरों पर जुडी जाती है तो दूसरी ओर सामूहिक हितों की खातिर व्यापक मुक्ति-संघर्ष में संलग्न है । मिथक इन दोनों छोरो पर अपने सरोकार बनाए रखने की क्षमताएँ जताता है। डॉ. रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में –' मिथक मानव जाति का सामूहिक स्वप्न एवं सामूहिक अनुभव है। मानव चेतना मिथकीय चेतना से ही विकसित होकर यथार्थवादी (ऐतिहासिक) चेतना में परिवर्तित होती है ---मिथक मनुष्यों का आदिम काव्य है। मिथक में आस्था तथा इससे भी अधिक हठात् विश्वास (मेक-बिलीफ) का आधार रहता है। इसी भूमिका पर मिथकीय कल्पना का हवा महल खड़ा होता है। आस्था ही मिथक को यथार्थ तथा पुनीत बनती है।'[3] यथार्थ चेतना, आस्था-विश्वास आदि के तत्व मिथक को समकालीन मानव-संघर्ष के लिए उपयोगी ही नहीं एक सीमा तक अनिवार्य भी बनाते है। मिथकों में मानव की सामूहिक चिंता चेतना एक संघर्ष के आयाम भी,परवर्ती विभिन्न युगों में जुड़ते रहे हैं। डॉ.नगेन्द्र का मत है कि-'भाव-तत्व का प्राधान्य होने पर भी साहित्य में विचार-गरिमा का अपना महत्त्व है यह ठीक है कि विचार यहाँ अनुभूति का वाहक बनकर ही प्रयुक्त होता है, किन्तु साहित्य में अर्थ-गौरव तथा स्थायी मूल्यवत्ता का समावेश मुख्यतः विचार तत्व के द्वारा ही होता है। मिथक में भी जहाँ तक हम समझते है, विचार तत्व का आभाव नहीं है, क्योंकि भारत और यूनान आदि –सभी प्राचीन देशों में दर्शन को तथा वैज्ञानिकों ने आरंभ में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, उनके बीज भी तो प्राचीन मिथकों में ही विद्यमान है।'[4]

वैदिक युग के देवासुर संग्राम-द्वन्द द्वारा वृत्रासुर वध, राम द्वारा रावण का वध, कृष्ण द्वारा कंस वध,असत्य या असद पर सत या सद् की विजय के आख्यान के विभिन्न रूपों हमें प्राप्त होते है। वैसे 'राम की शक्ति पूजा' निराला जी में भी आधुनिक युग में मानव के समक्ष विराट् अंधकार था, उसमें वर्तमान युग का चेहरा चरित्र

स्वतः प्रकट है। इस अंधकार में आधुनिक युग की मानवीय त्रासदी के वे पक्ष प्रस्तुत हुए हैं, जो मूल्यों के स्तर पर बाह्य से अधिक भीतर घमासान मचाए हुए है। 'राम की शक्ति पूजा' का आरंभ सांकेतिक कथन से हुआ है-'रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर रह गया राम-रावण का अपराजेय समर आज का-----'।[5] यहाँ पर निरालाजी ने 'रवि हुआ अस्त' की संकेत व्यंजना द्वारा सूचित करते है कि अंधकार घिर गया है। बाहरी मूल्य परक युद्ध भीतरी आकांक्षा में उतर आया है। क्योंकि आज का युद्ध निर्णायक नहीं रहा। फिर युद्ध होगा----यानी युद्ध जारी रहेगा, अंतिम निर्णय तक। यह समकालीन कविता में मानव में मानव संघर्ष का एक विशेष सन्दर्भ है। उसी प्रकार धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्युगाथा' ग्रीक पुराकथा पर आधारित है,उसकी रचनागत एवं मूल्यगत प्रासंगिकता, उसे मिथकीय पुनः सृजन के धरातल पर युग-सापेक्ष अर्थवत्ता प्रदान करती है और समकालीनता के संदर्भो को निकट लाता है। प्रमथ्यु अग्नि को चुरा कर धरती पर लाता है,जिसके दण्ड स्वरूप गिद्ध उसके कंधो पर बैठा उसका हृद्धय-पिंड नोच-नोच कर खाता रहता है। और जिनके लिए प्रमथ्यु यह सब सह रहा है, कि-'हम सब करिश्मों के प्यासे है, कोई भी करिश्मा कर दिखलाये, हम खुद क्यों ले कोई भी निर्णय, हम खुद क्यों भोगे कोई भी दंड ?"[6] उपयुक्त पंक्तियाँ भारत की आजादी के बाद के समूचे काल-खण्ड में जन साधारण की मानसिकता पर सटीक टिप्पणी है। जन मानस पर थोपी गुलामी भय और भक्ति की व्यवस्था के विरुद्ध 'प्रमथ्युगाथा' भावना में से उभरा वर्तमान के लिए एक संदेश है कि हम उस अग्नि का उपयोग बृहत्तर उदेश्यों के लिए करे, मात्र चूल्हा जलाने या आग तापने के लिए नहीं।

समकालीन कविता में मिथकों का प्रयोग पौराणिक आख्यानों के रूप में बहुत कम हुआ है। संपूर्ण कविता में मिथकीय आधार का निर्वाह कथात्मक रूप में करने की प्रवृत्ति के विपरीत प्रायः मिथकीय संदर्भो या मात्र आशयों का प्रयोग हुआ है । नदी, पेड़, सूर्य, समुद्र, पृथ्वी, आकाश, अंधकार आदि प्राकृतिक मिथक हों या अभिमन्यु, नृसिंह, धृतराष्ट्र, अहिल्या, गौतम आदि के वैदिक, पौराणिक, रामायण, महाभारत, युगीन मिथक हों या, राजनेता, संसद, संविधान जैसे नये राजनीतिक मिथक हों, इन सब के प्रयोग जहाँ रचनागत प्रभावों को गहनतर बनाते हैं, वहाँ एक सामूहिक चेतना को भी उजागर करने में कारगर सिद्ध होते है। एक समय सामूहिक-जातीय संघर्षों में धार्मिक-आध्यात्मिक आधार जो कार्य करते थे, आज मानववादी संघर्षो में वही कार्य मिथकीय सरोकारों से लिए जाने की संभावनाए बढती जा रही हैं। सामूहिक जातीयचिंता, भय, असुरक्षा की घड़ियों जिन स्थितियों में पुराख्यानों या मिथकों का जन्म हुआ था, आज भी कुछ ऐसी ही जरूरतों को पूरा करने में, स्थितियों-दशाओं को दबाव में फिर से आधार की खोज में व्यक्ति मिथकों के पास जा रहा है। उनका प्रयोग अपने समकालीन संकट से रु-बरु होने के लिए कर रहा है। नरेन्द्र मोहन की कविता-

'मेरा यह महानगर वासुकि सहस्फन है।
ऊँची बहु मंजिली इमारतों के जाल में फँसा।
हजारों, आँखों से देखता। मेरा यह महानगर।
धृतराष्ट्र है/ कुछ नहीं दीखता इसे---
सूर्य, बादल, नदी, पेड़, चिड़ियाँ, पंत्तियां और इन्सान ? कुछ भी नहीं।'[7]

यहाँ पर आधुनिक सभ्यता के विकास क्रम में एक यथार्थ रूप है। इस यथार्थ को इसकी सम्पूर्णता में जिस संश्लिष्टता में कवि ने अनुभव किया है, उसे खोलने-मूर्त करने में 'वासुकि सहस्फन' का मिथकीय प्रयोग यहाँ प्रतीकार्थ में जिस विचार को आकार प्रदान कर रहा है, वह महानगरीय प्रभव को दोष रूप में देखने वाला विचार ही नहीं, पूंजीवादी प्रभावों का निषेध करनेवाला मानववादी दृष्टि का सरोकार है, जो महानगर अपनी आँखों के रहते भी अँधा है। संवेदनशून्य है। 'एक अजीब –सी प्यार भरी गुर्राहट:/जैसे कोई मादा भेड़िया/अपने छौने को दूध पिला रही है और/ साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है।'[8] तत्कालीन व्यवस्था और उसकी नीतिमत्ता के स्वरूप एवं चरित्र को खोल ने वाली मादा-भेड़िया और 'छौने' के प्रयोग तथा इनके सम्बन्ध को उदघाटित करनेवाली घटना 'छौने को दूध पिलाना' और मेमने के सिर चबाना' से एक आदिम युगीन क्रिया – व्यापार एवं पशु-व्यवहार को आधुनिक युगीन तथा अपने देश के संदर्भो में चरितार्थ किया गया है । आदिम युगीन मिथकीय मानस एवं व्यवहार के सामयिक संदर्भो में इन प्रतीकात्मक व्यवहारों का चलन समकालीन कविता में उतरोत्तर बढ़ रहा है।

निष्कर्ष : इस प्रकार मिथक गहरे में एक कोरी कल्पना न होकर मनुष्य की विचार-प्रक्रियाओं, क्रियाओं शाश्वत प्राकृतिक सत्यों से तदाकार एवं साक्षात्कार कराने का माध्यम है। कविता में मिथकीय आशयों का प्रयोग और अपनी जातीय स्मृतियों की स्निग्धता से समृद्ध भाषा की ओर झुकाव उसे अपनी मिट्टी से ही गहरे जोड़ते है, साथ ही साथ संघर्ष करने की असली शक्ति अर्जित करने के लिए अक्षय जीवन-स्त्रोतों तक भी ले जायेगा। क्योंकि मानव समुदाय के सामने संघर्ष सिर्फ आजकी घटना नहीं है, अनादिकाल से मनुष्य इन स्थितियों से लड़ता आया है। भले ही इतने गहन एवं संश्लिष्ट न थे। और मनुष्य अपनी भौगोलिक, देशीय, जातीय, वैचारिक-सांस्कृतिक सम्पत्ति का इस्तेमाल हमेशा से करता रहा है और अपने सामूहिक सरोकार जता कर संकटों को लांघता। जीतता आया है। आज के जातीय- सामूहिक संकट के समय उसे गहन अवचेतना को संगठित अवस्थित रखने वाले इन चितन रूपों-सोचों को जगाना है।

सन्दर्भ सूचि :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी –ग्रन्थावली पृ.८५
2. समकालीन कविता:मिथकीय व्यवहार –डॉ.बलदेव वंशी पृ.६३
3. मिथक और स्वप्न:कामायनी की मन:सौन्दर्य भूमिका-डॉ.रमेश कुंतल मेध पृ.१२६
4. मिथक और साहित्य:डॉ.नागेन्द्र पृ.७०
5. राम की शक्ति पूजा-निराला पृ.४
6. प्रमथ्युगाथा-धर्मवीर भारती पृ.१२
7. एक अग्नि कांड जगहे बदलता-नरेन्द्र मोहन पृ.४५
8. पटकथा-धूमिल पृ.१२